आचार्य श्री हस्ती में गुरु तत्त्व

डॉ. मंजुला बम्ब

गुरु की विशेषताओं से ओतप्रोत आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज उच्चकोटि के साधक सन्त होने के साथ जन-जन के मार्गदर्शक एवं हितैषी थे। आचार्य हस्ती में गुरु तत्त्व का प्रतिपादन डॉ. मंजुला जी ने इस आलेख में कुशलता से किया है। -सम्पादक

जैन धर्म के तीन आराध्य तत्त्वों में देव तत्त्व के पश्चात् सर्वाधिक पूजनीय 'गुरु' तत्त्व है। विश्व के सभी धर्मों एवं संस्कृतियों में 'गुरु' को महिमा मण्डित किया गया है। अरिहंत या तीर्थंकर प्रत्येक काल में प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं होते। उनकी अनुपस्थिति में उनका प्रतिनिधित्व करने वाला गुरु ही होता है। देव की पहचान कराने वाला गुरु ही होता है। गुरु पद की महिमा का बखान करते हुए एक आचार्य ने कहा है-

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धेरे के कारण अंधे बनें हुए लोगों की आँखें जिन्होंने ज्ञानरूपी अंजन आंजने की सलाई से खोल दी, उनश्री गुरु को मेरा नमस्कार हो।

कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी बड़ा बताया है। क्योंकि गुरु ही वह माध्यम है, जिससे गोविन्द की पहचान होती है। सच्चा गुरु वह है जिसने जगत् से नाता तोड़कर परमात्मा में शुभ ध्यान लगा लिया है, जो क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों का त्यागी है तथा जो क्षमा रस से ओत-प्रोत है।

गुरु मार्गदर्शक होते हैं। अज्ञानतावश संसार में भटकते हुए मनुष्यों को ध्येय तक पहुँचने के लिये धर्म की सही राह गुरु ही बताते हैं। वे ही धर्म का स्वरूप समझाते हैं, धर्माचरण की प्रेरणा देते हैं तथा धर्माचरण के दौरान जो विघ्न बाधाएँ या कठिनाइयाँ आती हैं, उन्हें दूर करने के उपाय भी बताते हैं। वे कष्ट से घबराये हुये, अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग से चिन्तित और शोक-मग्न व्यक्ति को धैर्यपूर्वक सहन करने की प्रेरणा भी देते हैं तथा निराश और निरुत्साह व्यक्ति का उत्साह बढ़ाते हैं। उसमें साहस की शक्ति भर देते हैं।

आचार्य हस्ती धर्म और अध्यात्म के विषय में, समाज, संस्कृति और नीति के विषय में जिज्ञासु व्यक्तियों की शंकाओं के समाधान कर उन्हें धर्मानुप्राणित मार्गदर्शन देते थे। इस प्रकार वे स्व-पर कल्याण का, परोपकार का, उत्तरदायित्व निभाते थे। वे प्रत्येक विषय में जो भी प्रेरणा, निर्देश, उपदेश या मार्गदर्शन देते वह सब अहिंसा-सत्यादि शुद्ध नीतियुक्त धर्म का पुट लिए हुए होता था।

गुरुहस्ती प्रतिभावान, शास्त्रज्ञ, लोकव्यवहार के ज्ञाता, निर्लोभी, उपशमपरिणामी, आगे की बात को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पहले ही जान लेने वाले, जन-मन को आकर्षित करने वाले, परनिन्दा से रहित, गुणनिधान, मधुर शब्दों से धर्म-कथा करने वाले, शुद्ध आचरण वाले, उपदेशक, धर्ममार्ग-प्रभावक, विद्वानों द्वारा प्रशंसित, लोकरीति मर्मज्ञ, मृदुस्वभावी, निःस्पृह तथा साधुप्रवरों के सभी गुणों से युक्त थे। वास्तव में गुरु हस्ती की महिमा अवर्णनीय है। आपने अपने जीवन में आध्यात्मिक एवं वैचारिक मूल्यों को पूर्ण आत्मसात् कर प्रत्येक पल सजगता के साथ आत्मशुद्धि के मार्ग पर चलते हुए दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उस महासाधक में रागादि युक्त कामना एवं ग्रन्थि नहीं थी। न ही साधना का अभिमान था। वे क्रोधादि कषाय विजयी एवं जितेन्द्रिय थे। उनके जीवन में शान्ति के स्पष्ट दर्शन होते थे।

वे अनुशासनप्रिय थे। स्वयं गुरु चरणों के कठोर अनुशासन में रहकर उन्होंने शिक्षा और संस्कारों की निधि प्राप्त की थी। इसलिए एक सैनिक की भांति न केवल स्वयं अनुशासित जीवन जीते थे, अपितु दूसरों को भी अनुशासन की प्रेरणा देते थे। वाणी से कम, व्यवहार से अधिक उनका जीवन अनुशासन की जीती जागती तस्वीर था।

'विज्जा विनयसम्पन्ने' का शास्त्रीय आदर्श उनके जीवन के कण-कण में मुखरित था। विद्या के साथ विनय, विनय के साथ विवेक, विवेक के साथ वाग्मिता, व्यवहारपटुता आदि अनेक दिव्य, भव्य गुण आपश्री के रोम-रोम में थे। उनकी प्रतिभा बडी विलक्षण थी। भगवान महावीर यदि आज होते तो अपने इन गुण तत्त्वों से सम्पन्न शिष्य को आसुपन्ने-दीघपन्ने अर्थात् आशुप्रज्ञ-दीर्घप्रज्ञ आदि कहकर सम्बोधित करते। 'अपने लक्ष्य की ओर चले चलो' यही गुरु हस्ती के जीवन का मूल मंत्र था।

'गुरु' शब्द का सामान्य अर्थ होता है भारी, अर्थात् जो अज्ञानान्धकार मिटाने की जिम्मेदारी के भार से युक्त हो, अथवा सद्गुणों के भार के गौरव से युक्त हो। गुरु शब्द में दो अक्षर हैं- 'गु' और 'रु'। इन दोनों अक्षरों को भिन्न-भिन्न दो शब्द मानकर दोनों का समासयुक्त शब्द बनाया गया है - गुरु। भारतीय संस्कृति के उन्नायकों ने गुरु शब्द का विशेष अर्थ इस प्रकार किया है-

'गु' शब्दस्त्वन्धकारे 'रु' शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार-निरोधत्वाद् गुरुरित्यभिधीयते॥

अर्थात् 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है निरोधक। दोनों शब्दों का मिला हुआ अर्थ हुआ अन्धकार का निरोधक। अर्थात् गुरु वह है जो शिष्य के अज्ञानान्धकार को मिटा दे। भावान्धकार का निरोधक होने से ही कोई व्यक्ति गुरु कहला सकता है।

प्रश्न यह है कि इस भावान्धकार को कौन मिटा सकता है। जो स्वयं यथार्थ ज्ञान से प्रकाशमान हो, वही दूसरों को प्रकाश देकर उनके अज्ञानतिमिर को मिटा सकता है। जिसमें ज्ञान का प्रकाश नहीं है, जो स्वयं काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि दुर्गुणों का शिकार बना हुआ है वह दूसरों के अज्ञान, मोह आदि को कैसे मिटा सकता है? जैसे प्रदीप स्व-पर प्रकाशक होता है इसी प्रकार गुरु भी स्व-पर प्रकाशक होता है। जिस प्रकार प्रदीप स्वयं ज्योतिर्मान होकर ही अन्य को ज्योति प्रदान करता है, अदृश्य या अव्यक्त पदार्थों को आलोकित करता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है, इसी प्रकार गुरु हस्ती स्वयं ज्ञान और चारित्र से ज्योतिर्मान थे और अन्य को भी ज्ञान और चारित्र की ज्योति प्रदान करने के साथ-साथ हर समय हित शिक्षाएँ देते ही रहते थे।

एक बार जयपुर में आचार्यश्री रामनिवास बाग से गुजर रहे थे। साथ में श्री मानचन्द्र जी म.सा.(अब उपाध्यायप्रवर) थे। उस समय शेर गरज रहा था। आचार्य भगवन्त ने पूछा-'क्या बोलता है?' श्री मानचन्द्र जी म.सा. ने कहा कि -'बाबजी, शेर गरज रहा है।' गुरुदेव बोले-''मैं हूँ, मैं हूँ कहकर बता रहा है कि मैं पिजरे में पड़ा हूँ। इसलिए मेरी शक्ति काम नहीं कर रही है। यह आत्मा भी शरीर रूपी पिंजरे में रही हुई है। आत्मा भी समय-समय पर हुंकारती है-मैं हूँ अर्थात् मैं अनन्त ज्ञान से सम्पन्न हूँ। मैं अनन्त दर्शन से सम्पन्न हूँ आदि-आदि।''

इस तरह एक बार भगवन्त जयपुर के सुबोध कॉलेज प्रांगण में खड़े थे। पास में पत्थर गढने वाले व्यक्ति पत्थर गढ रहे थे। पत्थर गढते हुए कारीगर पानी छींट रहा था। गुरुदेव ने पूछा 'यह क्या कर रहा है?' उपाध्यायप्रवर पंडित रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. ने कहा कि काम कर रहा है। गुरुदेव ने कहा कि पत्थर पर पानी डालकर नरम कर रहा है। पत्थर कोमल हो तो ही गढा जायेगा। वे हर समय जीवन निर्माण की बातें बताया करते थे। उनकी छोटी-छोटी बातों में भी बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ होती थीं। वे कुशल शिल्पाचारी थे।

आपश्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन स्व-पर कल्याण में ही समर्पित किया। इसी कारण आपश्री के सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति खाली नहीं लौटता था। सामायिक, स्वाध्याय, ध्यान, मौन, नैतिक उत्थान, कुव्यसन-त्याग आदि जीवन जीने की कला आपसे प्राप्त होती थी। आपश्री स्वयं ध्यान-मौन के साधक, अप्रमत्त जीवन यापन करने वाले, आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, असीम आत्मशक्ति के पुंज, युगद्रष्टा, इतिहासमार्तण्ड, सामायिक-स्वाध्याय प्रणेता एवं चतुर्विध संघ के सफल अनुशासक सिद्ध हुए।

इसलिए गुरु का उत्तरदायित्वमूलक लक्षण बताते हुए कहा गया है- **गृणाति धर्मं शिष्यं प्रतीति गुरुः**।

अर्थात् जो शिष्य को उसका धर्म बताता है, सिखाता है, वह गुरु है। कुमारप्रबन्ध में भी गुरु का उत्तरदायित्वमूलक अर्थ बताया गया है - **सत्त्वेभ्यः सर्वशास्त्रार्थदेशको गुरुच्यते**। जो एकान्त हितबुद्धि से प्रेरित होकर जिज्ञासु जीवों को सभी शास्त्रों का सच्चा अर्थ समझाता है वही गुरु कहलाता है। आपकी उच्चकोटि की निर्मल संयम-साधना, विद्वत्ता, सूझबूझ, समन्वयशीलता, गुणियों के प्रति प्रमोदभाव आदि अनेक गुणों के कारण आपको श्रमणसंघ के आचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी म.सा. ने 'पुरिसवरगंधहत्थी' जैस शब्दों से सम्मानित किया। आप सुयोग्य शिष्य थे, जो अपने गुरु के हृदय में निवास करते थे।

गुरुदेव का ज्ञान अगाध था। आगम, थोकड़े, इतिहास, संस्कृत, प्राकृत, तन्त्र-मन्त्र चाहे जिस विषय पर उनसे चर्चा की जा सकती थी। तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. ने फरमाया- सवाईमाधोपुर के सन् 1990 के चातुर्मासोपरान्त हम पाली पहुँचे। गुरुदेव ने फरमाया कि महेन्द्र मुनि जी और गौतममुनि जी एक घण्टा पाठ सुनाते हैं, अब तू भी एक घण्टा सुनाया कर। मैं अब पढ़ नहीं सकता इसलिए तुम मुझे निरन्तर सुनाते रहो। वृद्धावस्था में भी भगवन्त की स्वाध्याय एवं जिनवाणी के प्रति कैसी निष्ठा। स्वयं वाचन नहीं कर सकते तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सन्तों से सुनते। भगवन्त ने हम सन्तों को भी खूब पढ़ाया। स्वस्थ रहते हुए एक भी दिन का अवकाश नहीं। 1 दिसम्बर 1992 को जलगाँव से विहार यात्रा प्रारम्भ हुई। कभी हमको विलम्ब हो जाता, तो उपालम्भ मिलता, परन्तु भगवन्त ने कभी भी देरी नहीं की। दशवैकालिक सूत्र और संस्कृत का अभ्यास प्रारम्भ करवाया। भगवन्त प्रेरणा करते कभी थकते नहीं थे। वे सारणा, वारणा धारणा-करते। हमें जागरूक रहने की शिक्षा देते। आचार्य दीप के समान होते हैं ''दीवसमा आयरिया।' वे स्वयं के जीवन को प्रकाशित करते हुए दूसरे के जीवन को प्रकाशित करते हैं। गुरुदेव बोलते या नहीं, उनका आचार बोलता था। आचार स्वयं प्रेरणा करता है।

संघ के प्रति समर्पण और स्वाध्याय के प्रचार-प्रसार के प्रति निरन्तर प्रयास आज भी हमें प्रेरणा दे रहा है। वीरपुत्र घेवरचन्द जी महाराज कहते थे- हस्ती गुरु की क्या पहिचान 'सामायिक-स्वाध्याय महान्।'

आचार्य श्री हस्ती चतुर्विध संघ की मुकुटमणि थे। वे व्यक्ति नहीं, संस्था नहीं, आचार्य नहीं, अपितु युग पुरुष थे। उन्होंने युग की परिस्थितियों को देखा, समझा और पाटा। अपने गुरुत्व को बखूबी निभाया। आप स्वयं बहुत विशिष्ट दर्जेके साहित्यकार थे और अपने शिष्य शिष्याओं में भी यही गुण देखना चाहते थे। साध्वीप्रमुखा, शासनप्रभाविका श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. ने बताया कि होगी कोई 40 से 45 वर्ष पुरानी बात। गुरु भगवन्त ने उनसे पूछा कि महासती मैनाजी दिन को आप जो पढती हैं क्या रात्रि को सोते समय उसका स्मरण आपको होता है। उन्होंने कहा- हाँ भगवन्! मुझे दिन की पठित बातें रात को बहुत याद आती हैं। गुरुदेव ने उनको प्रेरणा दी कि उसे सुबह उठते ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर लिख लिया करना। और उन्होंने गुरु आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। उन्होंने बतलाया कि आज मैं जो कुछ हूँ- चतुर्विध संघ के समक्ष हूँ। यह सब मेरी नहीं उस घड़ने वाले महापुरुष की अनूठी कृपा दृष्टि का फल है।

वास्तव में गुरु शिष्य का जन्मदाता नहीं, परन्तु माता-पिता से भी बढ़कर निर्माणकर्ता होता है। वह जीवन जीना सिखाता है। यही कारण है कि माता-पिता की अपेक्षा भी गुरु के प्रति शिष्य विशेष ऋणी है। अलेक्जेंडर मेसीडोन ने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा कि ''जीवन देने के लिए मैं अपने पिता का ऋणी हूँ, लेकिन उससे भी बढ़कर गुरु का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे अच्छी तरह जीवन जीना सिखाया।''

गुरु जीवन का महान कलाकार होता है। जैसे भौंडे, भद्दे, टेढे-मेढे खुरदरे पत्थर को लेकर मूर्तिकार अपनी छैनी एवं औजारों से उसे काट छीलकर सुन्दर देवमूर्ति बना देता है जो भविष्य में पूजनीय बन जाती है वैसे ही गुरु असंस्कृत, अनघड, अप्रशिक्षित शिष्य को अपनी वाणी और मन से प्रदत्त शिक्षा द्वारा घड़कर सुन्दर स्वच्छ सुसंस्कृत प्रशिक्षित जीवन का रूप दे देता है। इसीलिए तिलोक काव्य संग्रह में गुरु को शिष्य के जीवन का सुधारक, निर्माणकर्ता एवं परम उपकारी बताया है।

जैसे कपड़ा को थान दरजी बेतत आन
खंड-खंड करे जाण देत सो सुधारी हैं
काष्ठ को ज्यों सूत्रधार, हेम को कसे सुनार
माटी को ज्यों कुम्भकार पात्र करे त्यारी हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धरती के किरसान, लोह के लुहार जान
शिलावट शिला आन, घाट घडे भारी हैं।
कहत त्रिलोक रिख सुधारे ज्यों गुरु सीख
गुरु उपकारी नित लीजे बलिहारी हैं।

भावार्थ स्पष्ट है कि जैसे दर्जी कपड़े का थान लेकर पहले नाप लेता है, फिर काटकर सिलाई करता है। इस प्रकार कपड़े को सुधारता है। जैसे काष्ठ को काट छीलकर बढई अच्छी वस्तुएं बनाता है। सुनार सोने को काट पीटकर गहने बनाता है। कुम्हार मिट्टी को सान-गूंदकर बर्तन बनाता है। किसान भूमि को समतल करता है। लुहार लोहे को तथा सिलावट शिला को काट छीलकर अनेक रूप देता है। वैसे ही पितृ हृदय को लेकर उपकारी गुरु शिष्य को अनुशासन, प्रशिक्षण, भूल सुधार आदि से घडता है, उसे तैयार करता है। उसी प्रकार आपश्री ने अपनी संत-सती सम्पदा के जीवन-निर्माण में सर्वोत्कृष्ट प्रशिक्षण देने में कोई कसर नहीं छोड़ी, जो कि आज सब कुछ हमारे सम्मुख है। उनका संस्कारित परिवार अद्भुत है।

गुरुदेव ने शिक्षा की अनिवार्यता को महत्त्व प्रदान करते हुए फरमाया कि जीवन में शिक्षा के अभाव में साधना अपूर्ण मानी गई है। शिक्षा का वही महत्त्व है जो शरीर में प्राण, मन व आत्मा का है। जीवन में चमक-दमक, गति-प्रगति, व्यवहार-विचार सब शिक्षा से ही सुन्दर होते हैं। संसार की सब उपलब्धियों में शिक्षा सबसे बढ़कर है। दीक्षा के साथ अनिवार्य है। यही कारण है कि आज शिष्य-शिष्याओं एवं श्रावक-श्राविकाओं को स्वाध्याय-साधना रूप शिक्षा का अनमोल खजाना मिला है।

संवत् 2041 के जोधपुर चातुर्मास में क्षमापना के उपलक्ष्य में युवाचार्य महाप्रज्ञ रेनबो हाउस पधारे तब उन्होंने कहा था कि लोग कहते हैं कि आप अल्पभाषी हैं, कम बोलते हैं। पर कहां हैं आप अल्पभाषी? आप बोलते हैं, बहुत बोलते हैं, आपका जीवन बोलता है, संयम बोलता है, आप में निहित गुरुत्व बोलता है।

आप संघ में रहे तब भी एवं बाहर रहे तब भी सभी महापुरुषों का आपके प्रति समान आदर का भाव रहता था। आचार्य श्री आत्माराम जी म.सा. का आपके प्रति पूर्ण आदरभाव था। आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म.सा. समय-समय पर समस्या का समाधान मंगाते थे। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म.सा. स्वयं को साहित्य के क्षेत्र में लगाने में आपका उपकार मानते थे। प्रवर्तक श्री पन्नालाल जी म.सा. आपको विचारक एवं सहायक मानते थे और प्रत्येक स्थिति में साथ रहे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. ने आपको सिद्धान्तवादी एवं आचारनिष्ठ माना।

आपश्री गुणप्रशंसक तथा गुणग्राहक रहे, किन्तु पर-निन्दा से सदैव दूर रहे और जीवन-पर्यन्त इसी की प्रेरणा की। आप प्रचार के पक्षधर थे, किन्तु आचार को गौण करके प्रचार के पक्ष में नहीं रहे। जिनके मन में गुरु बसते हैं, वे शिष्य धन्य हैं, पर जो गुरु के मन में रहते हैं, जिनकी प्रंशसा शोभा गुरु करते हैं, वे उनसे भी धन्य-धन्य हैं। आपने संघ के संगठन, संचालन, संरक्षण, संवर्धन, अनुशासन एवं सर्वतोमुखी विकास व अभ्युत्थान हेतु जीवन समर्पित कर दिया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यप्रवर सेवा-शुश्रूषा करने में सदैव तत्पर रहते थे और इसमें प्रमोद अनुभव करते थे। आप न केवल सम्प्रदाय के संतों की, अपितु इतर सम्प्रदाय के संतों की सेवा भी निष्पक्ष भाव से करते थे। पूज्य आचार्य जयमल जी म.सा. की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध स्वामी जी श्री चौथमल जी म.सा. के संथाराकाल में आपने जो सेवा का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह विरल है। अपने स्वयं के परिवार के संतों में स्वामी जी श्री भोजराज जी म.सा., शान्तमूर्ति श्री अमरचन्द जी म.सा., बाबाजी श्री सुजानमल जी म.सा. प्रसिद्धभजनी श्री माणकमुनि जी म.सा. आदि सन्तों की अंतिम इच्छानुसार उनकी सेवा में रहकर आपने सेवाभाव को मूर्तरूप दिया। कुचेरा में स्थिरवास विराजित स्वामी श्री रावतमल जी म.सा. की सेवा हेतु दो सन्तों को उनके पास भेजकर आपने दो सम्प्रदायों के मधुरसम्बन्धों को एक कदम आगे बढ़ाया।

आपमें अन्य गुणों के साथ अपने सिद्धान्त पर हिमालय की तरह अडिग रहने का गुण अन्य लोगों के लिए प्रेरणास्पद रहा। आपने सिद्धान्तों से कभी समझौता नहीं किया। हमने अरिहन्तों को नहीं देखा, सिद्धों को नहीं देखा, परन्तु आचार्य भगवन्त में हमने अरिहन्तों एवं सिद्धों को प्रतिबिम्बित होते देखा है। महापुरुष किसी एक व्यक्ति, परिवार या सम्प्रदाय के नहीं होते, वे तो सभी के होते हैं, यह बात आचार्य भगवन्त पर लागू होती है। वे सबके थे और सबके लिए थे।

इसी प्रकार गुरु हस्ती ने माता-पिता एवं अभिभावक के समान शिष्यों को आध्यात्मिक बल प्रदान किया तथा उन्हें अध्यात्म विद्या के क-ख-ग से प्रारम्भ करके उच्च कोटि के अध्यात्म ग्रन्थों को पढ़ने, समझने और जीवन में उतारने का प्रशिक्षण दिया। आचार्य हस्ती ने उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. को बड़ी दीक्षा के बाद कहा- 'मेरे को अप्रमत्त भाव में रहकर बतलाना।' हर समय उनकी शिक्षा रहती थी। वे हर समय माता-पिता की तरह सीख देते ही रहते थे। गुरु शिष्य की भूलों को क्षम्य मानकर धीरे-धीरे वात्सल्य पूर्वक उसकी भूलें बताकर सुधारते थे। उसे अपने सान्निध्य में रखकर उसके खान-पान, शयन, वस्त्र, औषध, उपचार आदि का पूरा ध्यान रखते थे। इस प्रकार से आचार्यप्रवर इन्द्रिय-विजय, कषाय-विजय एवं आवश्यकताओं पर संयम, आदतों पर नियन्त्रण एवं स्वेच्छा से शरीर और मन पर कंट्रोल करने का प्रशिक्षण इस प्रकार से देते थे कि अनुशासन में रहना भारभूत नहीं मालूम होता था। गुरु के द्वारा दी गई ताड़ना, उपालम्भ या फटकार शिष्य को औषध की तरह रुचिकर और हितकर लगती है।

इस प्रकार मैं आपकी कौन-कौनसी विशेषता पर प्रकाश डालूँ। लेखनी से आपके गुणों को अंकित करना संभव नहीं। क्या कभी विराट् समुद्र को नन्हीं सी अंजलि में भरा जा सकता है। वे चतुर्विध संघ के जीवन-निर्माण में सदैव सजग रहे। वे स्व एवं संघहित में ही मृत्युंजय बनकर हमें व चतुर्विध संघ को धन्य-धन्य कर गए।

-3, रामसिंह रोड, होटल मेरू पैलेस के पास, टोंक रोड, जयपुर-302004 (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org